International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030; Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 1; Issue 3; March 2016; Page No. 108-110

इक्कीसवीं शदी के उपन्यासों में सामाजिक सम्बंधों की समीक्षा

नीलम
रिसर्च विद्वान, लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, फागवारा, पंजाब, भारत।

प्रस्तावना

पारस्परिक मेल-मिलाप पर आधारित इन्हीं संबंधों को ही समाज का नाम दिया जाता है। समाज के बिना वह जीवित नहीं रह सकता। प्राचीनकाल से ही मनुष्य अपने विकास के लिए प्रयत्नशील रहा है और इस कारण उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि एक-दूसरे के सहयोग से ही मानव-जीवन संभव है। इस प्रकार समाज केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं अपितु सामाजिक संबंधों तथा समस्याओं का गहन जाल है। प्रत्येक समाज की अपनी मान्यताएं, रीति-रिवाज एवं परंपराएं होती हैं। ये परंपराएं ही समाज विशेष में रहने वाले भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधती है। प्रायः हर युग के रीति-रिवाज एवं जीवन-मूल्य समयानुकूल परिवर्तित होते रहते हैं। यदि उनमें स्थिरता आ जाए तो सामाजिक विघटन की प्रक्रिया आरंभी हो जायेगी। इस प्रकार किसी एक ही उद्देश्य को लेकर किसी निश्चित दिशा में जाने वाले मानव समूह को समाज कहा जाता है। 'समाज' शब्द पर दृष्टिपात करें तो 'बृहद हिंदी कोष' में समाज का अर्थ मिलना, एकत्र होना, समूह संघ, दल, सभा, समिति आदि से लिया गया है।[१] जो मूलतः एक ही अर्थ प्रदान करते हैं। दा ऑक्सफोर्ड हिंदी-इंगलिश डिक्शनरी में भी समाज शब्द का अर्थ सभा से लिया गया है।[२]

आज समाज में सब कुछ पैसा है। रिश्ते की जगह भी पैसे ने ले ली है। मर्यादा की डोरी टूटती है तो भले ही टूटे। पिता व पुत्र का रिश्ता अब केवल धन पर आधारित होकर रह गया है। वंश में वृद्धि के लिए पुत्र जन्म जरूरी है। कहते हैं कि उसके बगैर पिता की आत्मा को स्वर्ग नहीं मिलता भटकती रहती है। स्वर्ग में भटकेगी या न भटकेगी यह तो पता नहीं लेकिन जीते जी अवश्य भटकती है जब पुत्र मिलने को भी घर न आये और अपनी पत्नी के साथ अलग घर बसा ले क्योंकि उसके पिता को उसको देने के लिए कुछ भी नहीं है। मृत्यु पर जो घर की शुद्धि तेरह दिन बाद होती है वह पुत्र तेरह दिन तक घर में बेकार नहीं बैठ सकता क्योंकि पैसे का नुकसान होता है इसलिए तीन दिन में ही घर की शुद्धि करवा लेता है और समस्त कर्त्तव्य की इति श्री भी। मंजु सिंह के तृष्णा का पात्र पप्पू अपने पिता की मृत्यु पर केवल तीन दिन के लिए ही घर आया -

'पप्पू अपनी गुजराती पत्नी के साथ आया अपने दो वर्षीय पुत्र को लाना उसने उचित नहीं समझा और फिर जब नाना जी हैं तो फिर स्व० बाबा से क्या सरोकार? जो अपने जीवनकाल में मात्र एक बार ही तो गये थे उससे मिलने और वह भी उसके जन्म के समय पतली सी एक सोने की जंजीर उसे देकर कैसी जग हंसाई करवायी थी भूल नहीं पाया था। पप्पू जिसे उसकी पत्नी ने कब का उतार फैंका था।''[३]

माँ-बाप दिन रात एक करके बच्चे का पालते हैं हर कष्ट स्वयं सह लेते हैं लेकिन अपने बच्चे को कोई कष्ट नहीं होने देते। वहीं बच्चे जब बड़े होकर पैसे की हवस में माँ-बाप को भुला बैठते हैं तो माँ-बाप की क्या हालत होगी? बच्चे जिन्हें बुढ़ापे का सहारा माना जाता है बुढ़ापा आने पर वे नजर ही नहीं आते। 'चन्दन के फूल' उपन्यास की पात्र एक वृद्धा जिसके दो बेटे हैं लेकिन उनकी शक्ल देखे उसे पाँच वर्ष हो गये हैं। वह अपनी मनः स्थिति जाहिर करती हुई कहती है -'आज मैं वृद्ध हो चुकी हूँ। मेरे दोनों पुत्र मेरी गोद में खेलकर बड़े हुए। पाँच साल होने को आए, किसी ने मेरी सुध नहीं ली या जरूरत नहीं समझी। जब मेरी मृत्यु हो जाएगी, तो सब यही कहेंगें कि उसकी माँ थी, उसकी पत्नी थी, उसकी बेटी थी और मुझे एक फ्रेम में जड़ दिया जाएगा। इससे बाहर मेरा कोई व्यक्तित्व नहीं है। कोई साधना नहीं है।''[४]

कमलिनी कौल कृत 'तृषिता'में बेटी लालिमा मां की इच्छापूर्ति हेतु अपने भविष्य को निछावर नहीं कर सकी। शर्मा महाराष्ट्रीयन है। सांस्कृतिक मूल्यों को ताक पर रखकर पंजाबी लड़के के साथ भाग जाती है। वह मां से कह उठती है-' मैंने चाहकर भी तुम्हें कभी पीड़ा नहीं दी। पर मैं जानती हूँ मेरे जाने से तुम्हें मर्मान्तक पीड़ा होगी। मुझे क्षमा करना माँ। मैं आपकी इच्छापूर्ति हेतु अपने भविष्य को निछावर नहीं कर सकती हूँ।'[५]

आज नारी पुरानी संस्कारों से विद्रोह करके समाज में अपनी विशेष पहचान बनाना चाहती है। (मुझे चांद चाहिए) 'सुरेन्द्र वर्मा' की वर्षा जब पिता के सामने ही शराब पीती है तो पिता झल्ला उठते हैं - ''यह वंश की परम्परा के अनुकूल नहीं।'' पिता ने कहा, ''अपनी सात पीढ़ियों में किसी पुरूष ने भी मंदिरा का हाथ नहीं लगाया होगा, स्त्री की तो बात छोडो। परिवार की सात पीढ़ियों में किसी स्त्री ने काम नहीं किया, पर मैं कर रही हूँ।''[६]

घरेलू औरत भी अब विद्रोह पर उतर आयी है। (बेघर) 'ममता कालिया' के परमजीत की पत्नी रमा जब सारा दिन इधर-उधर पड़ोस में बैठकर समय गुजारती है तो वह समझाता है कि घर में रहा रहे अखबार पढ़ा करें फिर भी समय बचता है तो अपनी सास के लिए स्वेटर वगैरह बुन दिया करें। इतना सुनते ही रमा बरस पड़ी।

'क्यों पहले क्या कम दिया है जो अब और दूँ। मेरी माँ ने महीनों लगाकर दहेज तैयार की थी। पचासों चक्कर करोल बाग में लगाए थे, तुम्हारी माँ ने एक हाथ से सब कुछ उठाकर बेटी को थमा दिया। वह तो मैंने उतारे होते तो गहनों के एक दो सेट भी दे डालती। मैं कुछ नहीं बुनने वाली।''[७]

इस प्रकार आधुनिक समाज में चाहे वह शहर हो या ग्राम नारी के प्रति पुरूश वर्ग का आज भी वही वासनात्मक दृष्टिकोण है। लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण वह अति स्वेच्छतावादी हो गई है। वह अब पुरूष के हाथ का

खिलौना नहीं रही। अत्यधीक बंधक ने उसे विद्रोही बना दिया है।

आलोच्य उपन्यासों में पारिवारिक विघटन का सजीव चित्रण किया गया है। पारस्परिक फूट, कलह तथा आत्म हीनता आदि दुष्प्रवृतियों के कारण पारिवारिक सुख रुपी सूर्य को ग्रहण लगा हुआ है।[८] पारिवारिक विघटन की घुटन में प्रेम कुमार मणी के पात्र भेगते हैं।[६]

जीवन का प्रतिबिम्ब होने के नाते समाज की संपन्नता-विपन्नता, विलास-संयम, आशा-निराशा, जय-पराजय सभी अन्तर्बाह्य परिस्थितियाँ साहित्य में प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। उपन्यासकारों ने वर्तमान मूल्य-विघटन पर चिंता जताई है। इक्कीसवीं शदी के उपन्यासकार सचेत साहित्यकार रहे हैं। इनके उपन्यासों में परिवर्तित-सामाजिक-व्यवस्था पर कटाक्ष करके अखण्ड राष्ट्र के लिए सुदृढ़ समाज की कल्पना की गई है। उन्नीसवीं शती में 'हिन्दू जाति का प्रत्येक अंग विकृत हो चुका था। समय की प्रगति के अनुसार समाज में आवश्यक सुधार और परिवर्तन करने के स्थान पर हिन्दू परम्परा की लीक पीट रहे थे। गतानुगतिकता और रूढ़िवाद के अन्य भक्त बन बैठे थे।''[१०] जाति पाँति, दहेज, अनमेल विवाह आदि कई प्राचीन रूढ़ियों तथा कठोर नियम बन्धन समाज को जकड़ कर इसकी प्रगति पर कुठाराघात कर रहे थे। समाज का नैतिक पतन हो जाने के कारण ईर्ष्या, द्वेष, मोह, दैन्य, दौर्बल्य, अशक्ति, हिंसा, स्वार्थासक्ति, अकृति, असाहस, भय, संदेह तथा भोग विलास आदि अनेक विकार समाज में पनप रहे थे। इस प्रकार अनेक व्यसनों से ग्रस्त समाज किंकर्तव्यविमूढ़ सा हुआ अधःपतन की ओर जा रहा था।''समग्र रूप से विचार करने पर समाज की सृजनात्मक और नवनवोन्मेषशालिनी शक्ति का था। उसमें नए प्राण, नवीन शक्ति और चेतना फूँकने की आवश्यकता थी।[११]

आलोच्य उपन्यासकारों ने समाज के कायर, आलसी, अकर्मण्य, परमुखापेक्ष, धर्मान्ध, अन्धविश्वासी, छूआछूत फैलाने वाले ढ़ोंगी, पाखण्डी, मनचले, निर्लज्ज आदि महापुरूषों पर अच्छी फब्तियाँ कसी हैं।''[१२] सुप्त समाज पर प्रतापनगर मिश्र भी खेद प्रकट करते हैं और अपने स्वाभिमान तथा गौरव को भुला देने वाली जाति के सुधार के लिए केवल भगवान का सहारा ढूँढते हैं।[३] बालमुकन्द गुप्त भी अपनी रचनाओं में उन सामाजिक दोषों का दिग्दर्शन कराते हैं, जो जातीय एकता में बाधक हैं। जब तक समाज द्वेष, बैर, विरोध तथा अन्य संकीर्णताओं से विमुक्त नहीं होता तब तक उसका जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता।[४] नाथूराम शंकर ने भी जाति की विमूढ़ता तथा उसके अज्ञान की चर्चा की है और मतमतान्तरों की भूल-भुलैयों में पड़े समाज का दिग्दर्शन कराया है।[५] आज समाज में से श्री, उत्साह, शूरता, धन, तेज, बल नष्ट हुआ है और आलस्य, कायरता, निरूद्यमता, मूढ़ता, बैर, कलह से घिरकर पतन हो चुका है।[१३] 'समाज की अवनति इतनी हो गयी थी कि 'झूठ, दम्भ, विश्वासघात से लोग परधन हरण करते थे, कोई भी अनीति करने में लोग नहीं डरते थे, जो सद्गुण मनुष्य-जीवन की उन्नति के साधन हैं, उन्हें पेट-बाधक मानकर त्याग किया जाता है।''[१४] इसलिए तो समाज में अनेक अवगुणों ने स्थायी रूप से डेरा जमा लिया था। मोह-मदग्रस्त जन समुदाय शिथिल तथा प्राणहीन होकर अपनी जीवनशक्ति क्षीण कर चुका था। देशवासियों का मानसिक पतन इतना अधिक हो चुका है कि भारतीय अधिकारी तथा प्रतिष्ठित लोग उपाधियाँ तथा पदवियाँ प्राप्ति के लोभ से राष्ट्र संघातक कार्य करते हैं।[१५] हिन्दु जाति की दयनीय अवस्था पर तरस खाकर भगवतीचरण वर्मा ने हिंदुओं का यथार्थ वर्णन किया है।[१६] आलोच्य उपन्यासकार जया जादवानी ने भी माना है कि हिन्दु समाज कुरीतियों का केन्द्र बना हुआ था। साहित्य संगीत तो लुप्त हो गया था। रिश्वतखोरी, मात्सर्य, अनुदारता, गृहकलह के मालिन्य से समाज दुबला बन गया है।[१७] इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियों के कारण जीवनधारा का प्रवाह अवरूद्ध होता था। भयनिर्मित अमित रूढ़ियों की कारा ने मानव का मन बाँध लिया था।

पाश्चात्य रंग में रंगे युवक विदेशी धुनों पर नाचना, नशे में चुर रहना, कलबों में रातें बिताना उनकी दिनचर्या का अंग है। (चमेली का फूल) 'डॉ० राकेश सक्सेना' का 'विनोद' जो सदाशिव का पुत्र था 'घर में आचरण तो सही रखता था लेकिन घर से बाहर जाते ही ''विनोद क्लब जाता था 'वहां की रंगीन दुनिया उसे बहुत अच्छी लगती थी। रोज नयी लड़की उसके साथ होती। जिसके साथ वह डान्स करता, उसके नृत्य में कभी रॉक एण्ड रॉल का दौर चलता। कभी वह मुग्ध होकर देखता और कभी उसकी प्रेयसी कैबरे नृत्य करती।''[१८]

आज माँ-बाप को भी अपना भविष्य उज्जवल ऐसे बच्चे के साथ नजर आता है जो पढ़ाई-लिखाई में भले ही कम हो लेकिन दादागिरी में आगे क्योंकि उन्हें मालूम है कि दादागिरी से शिक्षा तो पूर्ण हो ही जायेगी। आगे की जिन्दगी में भी कामयाब वही होगी और जो आदर्शो पर आधारित है वह खुद तो भूखा मरेगा ही साथ में हमें भी मारेगा। 'कृष्णसुकुमार' का हरिहर जो गिरधर का छोटा भाई था। पढ़ाई कम दादागिरी अधिक करता था। माँ-बाप उसी की प्रशंसा करते थे। गिरधर स्वयं से ही बातें करते हुए बुदबुदा रहा है - ''हरिहर धुआंधार भाषण दे सकता है.... हड़ताल करवा सकता है... दंगे करवा सकता है... पुलिस पर पथराव करवा सकता है... बसें फुकवा सकता है।... ये ही तमाम बातें तो है जो आगे की सीढ़ी मजबूत करती है।... वह आज छात्र नेता है कल जननेता होगा और परसों राजनेता होगा और परसों राजनेता ..... कौन उसके भाग्य पर संदेह कर सकता है भला?... वह मिनिस्टर के इलावा कुछ और बन ही नहीं सकता।[१९] जात-पात की कट्टरता हमारे अंदर इस कदर समाई हुई है कि जात को अपना अहं बनाकर हम अपनी औलाद की संपूर्ण जिंदगी तक तबाह कर डालते हैं। (आकाश पक्षी) 'अमरकांत' के इंजीनियर साहब जब अपने लड़के का रिश्ता लेकर अपने पड़ौसी जो 'बड़े सरकार' के नाम से जाने जाते हैं। उनके पास जाते हैं तो बड़े सरकार जाति-पाति को महत्व देते हुए रिश्ते से इंकार कर देते हैं-'जाति-पाति तो ऋशि मुनियों का बनाया है। भगवान रामचन्द्र भी जाति-पाति मानते थे। लोग सम्भलकर रहें नहीं तो जब हम लोग फिर आएंगें तो.''[२०]

(तृषिता) 'कमलिनी कौल' का मल्हार अपनी बुआ श्यामली को समझाता है कि वह श्रमा का रिश्ता क्यों मंगेशकर से कर रही है वह उसके योग्य नहीं है सिर्फ इसीलिए कि वह महाराष्ट्रीयन है। क्या जाति-पाति ज्यादा जरूरी है योग्यता से? इस पर श्यामली चिल्ला उठी ''पंजाबी का बच्चा है बह दुष्ट।'' क्षुब्ध स्वर में श्यामली बोली।

''पंजाबी होना अक्षम्य....'' श्यामली ने मल्हार को संकेत से बोलने को रोका।

'मैनें कब कहा अक्षम्य अपराध है। मैनें क्या ठेका ले रखा है। समाज-सुधार का ? नहीं, मैं तो अपनी ही जाति समाज में लड़की को ब्याहूंगी।'' श्यामली बोली।[२१]

जाति-प्रथा ने कितने ही युवाओं की जिंदगी को नरक बना दिया। जाति की महता अधिक रखते हुए कई माता-पिता तो अधिक उम्र वाले लड़के से विवाह कर देते हैं सिर्फ यह सोचकर कि वह अपनी जाति का है। (तृष्णा) 'मंजु सिंह' की 'प्रकृति' के पिता उम्र में दस वर्ष बड़े इंजीनियर लड़के से विवाह तय करते हैं जो पांच वर्शों से विदेष में रह रहा है - मि० त्रिपाठी। उन्हें जाति एक होने से सब प्रकार से योग्य होगा। विरोध करने पर वह बोले ''लड़के की उम्र थोड़े ही देखी जाती है उसके तो गुण देखे जाते हैं'' इलैक्ट्रिकल इंजीनियर लड़का वह भी लंदन में और सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपनी जाति बिरादरी का है।''[२२] इक्कीसवीं शदी के उपन्यासकार सचेत साहित्यकार रहे हैं। इनके उपन्यासों में परिवर्तित-सामाजिक-व्यवस्था पर कटाक्ष करके अखण्ड राष्ट्र के लिए सुदृढ़ समाज की कल्पना की गई है। उन्नीसवीं शती में 'हिन्दू जाति का प्रत्येक अंग विकृत हो चुका था। समय की प्रगति के अनुसार समाज में आवश्यक सुधार और परिवर्तन करने के स्थान पर हिन्दू परम्परा की लीक पीट रहे थे।

(तृष्णा) 'मंजू सिंह' की 'सांवली' जो विदेश में रह रही है। जब वह अपनी मित्र स्वप्निल से मिलती है तो उसे अपने परिवार के बारे मे बताती है कि मेरी बड़ी बेटी मनुहार हायर सैकेण्डरी में पढ़ती है और छोटी बेटी आकांक्ष सेवन स्टैन्डर्ड में है और बाबा अभी नौ वर्ष का है, सैकेंड़ स्टैन्डर्ड में पढ़ता है। हंसते हुआ आगे सांवली बोली ''भई बेटियों से तो कोई वंश तो चलता नही है, वंष तो बेटों से ही चलता है, इसीलिए तो हमारे तीन बच्चे हैं।''[२३]

हमारे भारतीय समाज में बचपन से ही लड़की को यह एहसास दिलाया जाता है कि वह लड़के की बराबरी नहीं कर सकती। 'सोना चौधरी' के (पायदान) की आंचल जब बुआ के घर जाती है उनकी सहायता के लिए क्योंकि वह बीमार रहती है। वहाँ उसे उसकी बुआ का बर्ताब कुछ अलग ही नजर आता है। आंचल सोच रही है कि वहाँ बीता जीवन कैसा था। ''बुआ के तीन बेटों में से दो मुझसे बहुत बड़े थे। पर बुआ बजाय उन्हें काम बताने के मुझे उनके भी काम करने को कहती। कभी मैं हठ करने लगती की उनके हिस्से का काम भी क्यों करूं? उनसे करवाइए। तब बुआ बोलती वे पढ़ रहे हैं, उनकी पढ़ाई मुश्किल है तब लगता था कि उनकी पढ़ाई, पढ़ाई और मेरी पढ़ाई कुछ नहीं।''[२४] कितना फर्क है लडकी और लडके में। (तृषिता) 'कमलिनी कौल' की पूनम भी ऐसे ही तनाव को झेल रही है। पूनम नौकरी करती है और सारी कमाई अपनी मां दुर्गा के हाथ पर लाकर रख देती है उसकी मां दुर्गा उसे केवल दो सौ रूपये पूरे वेतन में से महीन भर के खर्च के लिए देती है। इस पर पूनम का अर्न्तमन क्षोभ से भर उठता है। वह सोचती है ''यही पाई-पाई का लेखा-जोखा देना पड़ता है और ऊपर से स्नेह रस की एक-एक बूंद के लिए तृष्णा थी तृषित हृदय को। यह कहां का न्याय है - पुत्र मनचाहा खाएं, पहने व मनचाही भार्या लाए। उनकी उद्धाम इच्छाओं आकांक्षाओं पर कोई अंकुश नहीं। हर अंकुश है पुत्री निमित। क्या वह मांस-मज्जा मण्डित मानवी नहीं है?''[२५]

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि समाज में जब विभिन्न प्रकार की विसंगतियां उत्पन्न होती है तभी साहित्यकारों को विघटित मूल्यों पर व्यंग्य करने की कला को दर्शाने का अवसर प्राप्त होता है। इक्कीसवीं शदी के उपन्यास साहित्य में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, आतंक, साम्प्रदायिकता, पक्षपातपूर्ण प्रशासन, राजनीतिक भाई-भतीजावाद आदि विघटित मूल्यों से जुड़ी परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया गया है तथा समाज की अनेक कुरीतियां और समस्याओं का अवलोकन करके उनकी समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. बृहद् हिदी कोष, सं कलिका प्रसाद राजवल्लभ सहाय, मुकंदीलाल श्री वास्तव, पृ० १२०१।
२. The oxford Hindi-English Dictionary, Edited by M.C. Gregor, Page 986.
३. मंजु सिंह, तृश्णा, पृ० १०२-१०३।
४. महेन्द्र सिंह 'दर्द' चन्दन के फूल, पृ० ४५-४६।
५. कमलिनी कौल, तृशिता, पृ० १३४।
६. सुरेन्द्र वर्मा, मुझे चांद चाहिए, पृ० ५२६।
७. ममता कालिया, वेघर, पृ० १५०।
८. रविंद्र कालिया 'ए,बी,सी,डी, पृ० ४४-४५।
९. 'लोग मुंह पर सेठ की बड़ाई करते हैं बाद में पता चलता है, सेठ रण्डियों का बिजनेस करता है।-प्रेम कुमार मणी'उपसंहार'पृ० ४१-४५।
१०. डॉ० केसरी नारायण गुप्त-हिन्दी भाषा और साहित्य की आर्य समाज की देन पृ० ४।
११. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० ११
१२. रामनरेश त्रिपाठी-पथिक पृ० ४५।
१३. मनु शर्मा'समय साक्षी है' पृ० ९१-९७।
१४. रामचरित उपाध्याय-राष्ट्रभारती पृ० ४४।
१५. प्रेमधन-प्रेमधन सर्वस्व-प्रथम भाग पृ० १८।
१६. भगवती चरण वर्मा-हिन्दू-मधूकण-पृ० ५२-५३।
१७. जया जादवानी'तत्वमसि' भूमिका से
१८. डॉ० राकेश सक्सेना, चमेली का फूल, पृ० ५०।
१९. कृश्णकुमार, इतिसिद्धम, पृ० ६६।
२०. अमरकांत आकाषपक्षी, पृ० ६३।
२१. कमलिनी कौल, तृशिता, पृ० १३८-१३९।
२२. 'मंजु सिंह, तृश्णा पृ० ८१।
२३. 'मंजु सिंह, तृश्णा पृ० ११४।
२४. सोना चौधरी, पायदान, पृ० १७।
२५. कमलिनी कौल, तृशिता, पृ० १३।